भारतीय संविधान की उद्देशिका एवं संवैधानिक प्रावधान

डा0 प्रभा गौतम,

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, विद्यान्त हिन्दू पी0जी0 कालेज, लखनऊ,उत्तर प्रदेश

शोध सारांश

संविधान की उद्देशिका किसी देश के संविधान की प्रभुसत्ता के स्रोत, दर्शन, मूल आस्थाओं, नागरिकों की आकांक्षाओं, शासन के लक्ष्यों का दर्पण होती है। दार्शनिक आधार एवं लक्ष्यों के दृष्टिकोण की दृष्टि से भारतीय संविधान की उद्देशिका अद्भुत और अद्वितीय है। भारतीय संविधान की उद्देशिका संविधान का भाग नहीं है इसके उपरान्त भी सम्पूर्ण संविधान उसी का परिभ्रमण करता है। प्रस्तुत लेख में भारत के संविधान की उद्देशिका में वर्णित आदर्शों, लक्ष्यों की विवेचना के साथ तत्सम्बन्धी संविधानान्तर्गत प्रावधानों का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द– *उद्देशिका, संविधान, लोकतन्त्र, न्याय, धर्मनिरपेक्षता, समानता, समाजवाद, स्वतन्त्रता।*

विश्व के लोकतान्त्रिक देशों में भारत का एक अहम स्थान है, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने सभी नागरिकों को मताधिकार प्रदान कर विश्व को विस्मित कर विश्व के सबसे विशाल लोकतन्त्र की उपाधि प्राप्त की। भारत में लोकतन्त्र की स्थापना में हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा निर्मित संविधान की महती भूमिका रही है। भारतीय संविधान निर्माता लोकतंत्र की स्थापना के लिए कितने समर्पित व आकांक्षित थे इसके दर्शन हमें भारतीय संविधान की उद्देशिका में ही प्राप्त हो जाते हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने भावी संविधान के उद्देश्यों को निर्धारित करने के लिए जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक जुलाई 1946 में एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की। विशेषज्ञ समिति द्वारा अनुमोदित प्रस्ताव को पं. नेहरू ने 13 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा के समक्ष रखते हुए कहा कि ''यह प्रस्ताव संकल्प से कुछ अधिक है, यह एक घोषणा है यह एक दृढ़ निश्चय हैं यह एक प्रतिज्ञा है एक वचन है और हम सभी के लिए एक समर्पण है।'' यही प्रस्ताव भारतीय संविधान की प्रस्तावना का आधार बना।

उद्देशिका

हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई0 (मिति मार्गश्शीर्ष शुक्ला सप्तमी संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा हम संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते है।

जो आदर्श संविधान की उद्देशिका के आधार है उनके बिना लोकतन्त्र की परिकल्पना ही असम्भव है। यह सभी शब्द लोकतन्त्र के उच्चतम मूल्यों को साकार करते है जिनको परिपूर्ण करना प्रत्येक लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था की सफलता का मापदण्ड हैं। हमारी उच्चतम न्याय व्यवस्था के समक्ष यह प्रश्न रहा हैं कि उद्देशिका हमारे संविधान का अंग हैं या नही। सिंथैटिक्स एण्ड कैमिकल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1990) एस.सी.सी. 109 में न्यायमूर्ति गडकर ने कहा कि उद्देशिका संविधान का अंग नही हैं यह विधानमंडलों या राज्य के अन्य अंगो को शक्तियां प्रदान नही करती, अधिकार मात्र संविधान के उपबन्धों से ही प्रदान किये जा सकते है, दूसरी ओर गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के मामले में न्यायमूर्ति हिदायतुल्लाह ने विचार व्यक्त किया कि संविधान की उद्देशिका उन सिद्धान्तों का सार हैं, जिन पर सरकार को कार्य करना है, वह संविधान की ''मूल आत्मा है, शाश्वत है, अपरिवर्तनीय है'' केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के वाद में अधिकांश न्यायधीशों का मत था कि उद्देशिका संविधान का अंग है। न्यायमूर्ति सीकरी ने कहा कि उद्देशिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं तथा संविधान को उद्देशिका में अभिव्यक्त महान तथा उदात्त भविष्य निरूपण के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय के शब्दों में हमारे संविधान का प्रासाद उद्देशिका में वर्णित बुनियादी तत्वों पर खड़ा हैं, यदि इनमें से किसी भी तत्व को हटा दिया जाये तो सारा ढ़ाँचा ही ढ़ह जायेगा। इस प्रकार उद्देशिका आज संविधान का एक अभिन्न अंग है लेकिन यह किसी शक्ति का स्रोत नही है ना ही किसी प्रकार की शक्ति को सीमित करता है।

उद्देशिका के शाब्दिक विश्लेषण की दृष्टि से देखे तो इसके सर्वप्रथम शब्द हम भारत के लोग भारतीय संविधान की शक्ति के स्रोत की ओर इंगित करता है। संविधान के अन्य किसी उपबन्ध में यह स्पष्ट प्रावधान नही है कि शासन की समूची शक्तियॉ भारतीय जनता से प्राप्त हुई हैं साथ ही अमेरिकी संविधान की भॉति भारतीय संविधान के निर्माण में राज्यों का नही वरन जनता का हाथ हैं।

उद्देशिका का द्वितीय शब्द सम्प्रभुता हैं। सम्प्रभुता का तात्पर्य राज्य की सर्वोच्च शक्ति से है। भारतीय संविधान के किसी भी उपबंध में यह उल्लिखित नही है कि सम्प्रभुता कहां निवासित है, उद्देशिका से ही यह सुनिश्चित होता है, कि भारत में भारत के लोगों में देश की सम्प्रभुता निवास करती है, इससे भारतीय एकता भी सुनिश्चित होती है, चूंकि संविधान की प्रस्तावना में हम भारत के लोग संविधान को स्वीकार करते है न कि अमरीका के संविधान की भॉति 'हम संयुक्त राज्यों के लोग'। भारतीय राज्य की सम्प्रभुता केन्द्र व राज्यों के मध्य विभाजित नही है। भारतीय संविधान में केन्द्र व राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन है सम्प्रभुता का नही, आपात काल में अनुच्छेद 352, 356, 360 के अनुसार केन्द्र व राज्यों के मध्य शक्तियों के विभाजन को भी स्थगित किया जा सकता है। भारतीय राज्यों को संघ से अलग होने का अधिकार प्राप्त नही है, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन सम्बन्धी सभी प्राधिकार केन्द्र की विधायिका को ही प्राप्त है। अनुच्छेद 1(3)(T) 2, 3, 4 के अन्तर्गत केन्द्रीय विधायिका भारत राज्य के सम्पूर्ण परिक्षेत्र (भारत संघ विदेशी राज्य क्षेत्र अर्जित कर सकता है साथ ही कतिपय संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत अपने क्षेत्र का परित्याग भी कर सकता है) (मगन भाई, ईश्वरभाई पटेल बनाम भारत संघ (1970) एस.सी.सी.100) व राज्य की सीमाओं, नाम में परिवर्तन, नये राज्य के निर्माण का पूर्ण प्राधिकार रखती हैं। भारतीय संविधान में एकल नागरिकता का प्रावधान है। राज्यों के नागरिकता प्रदान करने का अधिकार प्राप्त नही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में सम्प्रभुता जनता में निहित है जो अविभाज्य है।

तृतीय समाजवाद शब्द उद्देशिका में 42वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा सम्मिलित किया गया। संविधान निर्माता भारतीय व्यवस्था को किसी विचारधारा से जोड़ना नही चाहते थे। समाजवाद को भारतीय संविधान में कही व्याख्यायित नही किया गया है एक अस्पष्ट प्रत्यत्न 45वें संविधान संशोधन जो 44वें संविधान संशोधन के रूप में पारित हुआ, में की गई, जिसमें समाजवाद को सभी प्रकार के शोषण (सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक) से मुक्ति की संज्ञा दी गयी। अवधारणा के रूप में वर्तमान समय में इसकी इतनी शाखाएं प्रचलन में है कि इसकी सर्वमान्य परिभाषा दुष्कर है। कुछ विचारक समाजवाद को आन्दोलन , कुछ दर्शन व कुछ राजनीतिक व्यवस्था व आर्थिक प्रणाली के रूप में व्याख्यायित करते हैं। वैचारिक दृष्टिकोण से समाजवाद की कुछ मौलिक विशेषताएं अवश्य दृष्टिगत होती है, यथा समाजवाद पूंजीवाद का विरोधी है, व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन कर उत्पादन के साधनों पर सामाजिक नियन्त्रण का समर्थन करता है, ताकि समाज से शोषित वर्ग समाप्त हो जाये, एवं विभिन्न वर्गो के मध्य विषमता व वैमनस्य का विनाश हो। संविधान में मौलिक अधिकारों एवं नीति के निर्देशक तत्वों के माध्यम से समाजवाद के कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने का उद्देष्य निर्धारित किया गया हैं, लेकिन आर्थिक उदारीकरण, विदेशी पूंजी निवेश, वैश्वीकरण, सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के निजीकरण, विदेशी कम्पनियों के खुले आगमन के कारण आज हम समाजवाद के सच्चे अर्थो को स्थापित करने की परिकल्पना को धरातल पर अवतरित करने की कोशिश सच्चे अर्थो में नही कर सकते।

चतुर्थ धर्मनिरपेक्षता भी समाजवाद की तरह ही 42 वें संविधान संशोधन (1976) के द्वारा संविधान की उद्देशिका में सम्मिलित किया गया हैं, लेकिन इसका यह अभिप्राय नही हैं कि इससे पूर्व भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य नही था। इस संबध में सेंट जेवियर कालेज बनाम गुजरात राज्य (1974) के विषय में उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि संविधान में भले ही धर्मनिरपेक्ष राज्य की कहीं घोषणा नही की गई है लेकिन संविधान निर्माता एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की ही स्थापना करना चाहतें थे। संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकार इसको प्रमाणित करते हैं।

धर्म के प्रति राज्य के दृष्टिकोण को देखते हुए कुछ प्रकार के राज्य हमें विश्व में दृष्टव्य हैं, यथा धर्मतन्त्रीय राज्य, एक धर्म राज्य एवं बहुधर्मीय राज्य। धर्मतन्त्रीय राज्य धर्मशास्त्रों के आधार पर संचालित होते है यथा ईरान। एक धर्माय राज्य में संस्थात्मक विभेदीकरण होता है, धार्मिक व राजनीतिक संस्थाएं अलग–अलग होती है, लेकिन दोनों के मध्य एक व्यापक विचारधारात्मक जुडाव होता है, लक्ष्य की समानता होती है। इग्लैंण्ड, स्काटलैण्ड, जर्मनी जहॉ प्रोटेस्टेट क्रिश्चियनिटी तो इटली, स्पेन कैथोलिक क्रिश्चियनिटी को बढ़ावा देते है। इसी प्रकार विश्व के बहुत से देशों ने स्वयं को इस्लामिक राज्य घोषित किया है।

धर्मनिरपेक्ष राज्य में राज्य किसी धर्म की प्रस्थापना नही करता है। प्रत्येक धार्मिक समूह को अपने धर्म पालन, प्रसार व नये धर्म को अपनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती हैं। राज्य के द्वारा प्रदत्त सुविधाओं, योजनाओं, नीति निर्माण में किसी भी प्रकार का भेदभाव नागरिकों के साथ धार्मिक आधार पर नही किया जाता है। धर्मनिरपेक्ष विचार की भावना भारतीय समाज व संस्कृति में सदैव से विद्यमान रही है इसी भावना को संविधान निर्माताओं ने संविधान में नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकारों में प्रस्फुटित किया है। भारतीय संविधान की धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा के ज्ञान के लिए नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकारों के अनुच्छेद 15 16, 19, व 25 से 28 का विवेचन आवश्यक हैं।

अनुच्छेद 15 धर्म के आधार पर नागरिकों से किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध करता

है तो वहीं अनु0 16 राज्य के अधीन नौकरियों में सभी नागरिकों को अवसर प्रदान करता है। अनु0 19 समस्त भारतीय नागरिकों को विचार व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, संगठन निर्माण, रोजगार चयन, निवास चयन, देष भ्रमण, सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार भारतीय धार्मिक अल्पसंख्यकों को पूर्ण सुरक्षा व संतुष्टि को दृष्टिगत रख कर प्रदत्त किया गया है। अनुच्छेद 25 में अन्तःकरण की स्वतन्त्रता के अन्तर्गत सभी नागरिकों को कोई भी धर्म अंगीकार करने, उसका अनुसरण एवं प्रचार का अधिकार प्राप्त है। अनु0 26 सभी धर्म अनुयायियों को धार्मिक मामलों का प्रबन्ध करने, धार्मिक संस्थाओं की स्थापना, धर्म से सम्बन्धित सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व व उस सम्पत्ति का विधि के अनुसार संचालन का अधिकार नागरिकों को प्रदत्त करता है। अनु0 27 किसी धर्म विशेष अथवा धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति या पोषण में व्यय के लिए सुनिश्चित धन पर कर की अदायगी से उन्मुक्ति प्रदान करता है। अनुच्छेद 28 में राजकीय विधि से संचालित किसी भी शिक्षण संस्था में धार्मिक शिक्षा को निषिद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त अनु0 29 अल्पसंख्यकों को अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि, संस्कृति को सुरक्षित रखने व अनु0 30 विभिन्न अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि अनुरूप शिक्षण संस्थाओं की स्थापना व उनके प्रशासन का अधिकार प्रदत्त करता है। इसी प्रकार अनु0 325 यह घोषणा करता है कि धर्म, वशं या जाति के आधार पर किसी भी नागरिक को निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिए अपात्र न माना जाये। यह सभी अधिकार निर्बाध नही है राज्य सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, सामाजिक स्वास्थ्य आदि के हित में इन्हें प्रतिबन्धित कर सकता है।

पंचम भारतीय संविधान द्वारा लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली को स्वीकार किया गया है। भारत में राजशक्ति जनता में निहित होगी, शासन का संचालन बहुमत के आधार पर होगा, जनप्रिय कानूनों को ही देश में लागू किया जायेगा, धर्म, वर्ग, जाति, लिंग आदि के आधार पर सभी नागरिक राज्य के समक्ष समान होगें, साथ ही आर्थिक शक्ति का समतायुक्त वितरण होगा। इस प्रकार संविधान द्वारा राजनीतिक लोकतन्त्र के साथ ही आर्थिक और सामाजिक लोकतन्त्र स्थापित करने का प्रावधान किया गया हैं। राजनीतिक लोकतन्त्र की प्रस्थापना के लिए अनु0 326 द्वारा व्यस्क सार्वभौमिक मताधिकार नागरिकों को प्रदान कर पूर्ण प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का पालन किया गया है। अनु0 75(3) के द्वारा केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद व अनु0 164(2) के अनुसार राज्यों की मन्त्रिपरिषद केन्द्र व राज्यों की जनप्रतिनिधि संस्थाओं के प्रति उत्तरदायी होगी।

राष्ट्राध्यक्ष को लेकर विश्व में दो प्रकार की लोकतान्त्रिक व्यवस्थायें दृष्टव्य है वंशानुगत लोकतन्त्र एवं लोकतन्त्रीय गणतन्त्र। वंशानुगत लोकतन्त्र का उदाहरण ब्रिटेन है जहॉ संवैधानिक प्रधान का पद वंशानुगत रूप से प्राप्त होता है, जबकि भारत का संवैधानिक प्रधान राष्ट्रपति अपने पद को निर्वाचन से प्राप्त करता है। अनु0 55 में भारतीय राष्ट्रपति की चुनाव प्रक्रिया उल्लिखित हैं। इस प्रकार भारतीय गणराज्य में सर्वोच्च शक्ति सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार से सम्पन्न जनसमुदाय में निहित है। स्वतन्त्रता के पश्चात भारत ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता का परित्याग नही किया, अतः आरोप लगता है कि यह भारत के सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य की घोषणा के विरूद्ध है, लेकिन अब राष्ट्रमंडल का स्वरूप परिवर्तित हो गया हैं, वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से राष्ट्रों का राष्ट्रमंडल हो गया हैं, इसलिए भारत के सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य स्वरूप पर इसका कोई प्रभाव नही पड़ता है।

षष्ठ परिवर्तित समय में न्याय का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ हैं, परम्परागत कानूनी व नैतिक

न्याय का स्थान आज सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय ने गृहित किया है। सामाजिक न्याय से अभिप्राय है कि राज्य व्यक्तियों के मध्य जाति, वर्ग आदि के आधार पर विभेद न कर सभी के लिए उन्नति के अवसर प्रदान करे, वह दुर्बल वर्गो के शोषण को रोके और उनके विकास के लिए क्रियाशील रहें। सामाजिक न्याय की दृष्टि से संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के अनु0 14 में कानून के समक्ष समानता, अनु0 15 में राज्य के द्वारा धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध, अनु0 16 में सरकारी नौकरियों में समान अवसर, अनु0 17 में अस्पृश्यता का निषेध, अनु0 18 द्वारा उपाधियों का निषेध, अनु0 23 में मानवीय शोषण के सभी प्रकारों को दण्डनीय अपराध घोषित कर सामाजिक न्याय की प्रस्थापना के लिए महत्वपूर्ण प्रावधान किये गये है।

आर्थिक न्याय से अभिप्राय उत्पादन एवं वितरण के साधनों के न्यायोचित वितरण व सम्पदा के केन्द्रीकरण को रोकना है। समुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार हो जिससे सामूहिक हित साधित हो। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नीति के निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत अनु0 39,41,42,43 में कार्य की समुचित दशाओं के निर्माण, स्त्री–पुरूषों को जीवन के समान साधन उपलब्ध कराने, अर्थव्यवस्था के केन्द्रीकरण को रोकने, न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था, समान कार्य के लिए समान वेतन, रोजगार के अवसरों के निर्माण, उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मचारियों की भूमिका का सुनिश्चय, पिछडे वर्गो के आर्थिक हितों की अभिवृद्धि और सामाजिक अन्याय के सभी प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण, पोषाहार व जीवनस्तर में समृद्धि के लिए राज्य द्वारा नीतियां बनाने के लिए निर्देशित किया गया है।

राजनीतिक न्याय का अभिप्राय सभी नागरिकों की बिना भेदभाव के राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता से है। संविधान के अनुच्छेद 325 व 326 में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को स्वीकार कर एक मत प्रणाली को निर्वाचन व्यवस्था के लिए स्वीकार किया गया है, साथ ही अनु0 19 में प्रदत्त स्वतन्त्रताऐं संवैधानिक संशोधन 73–74 द्वारा भारत में पंचायती राज्य व्यवस्था को संवैधानिकता प्रदान कर शक्ति का विकेन्द्रीकरण कर राजनीतिक न्याय के विचार को सुदृढ़ किया गया है।

उद्देशिका में सप्तम अवधारणा स्वतन्त्रता को साधारण शब्दों में बंधनों का अभाव समझा जाता है, लेकिन ऐसा भाव स्वेच्छाचारिता के अधिक निकट है। स्वतन्त्रता का तात्पर्य व्यक्ति को उन कार्यो को करने की स्वतन्त्रता से है जो वह करना चाहता है, राज्य का कर्त्तव्य हैं कि वह उसके मार्ग में आने वाले अवरोधों का निवारण करें। इसमें समानता का विचार भी सन्निहित है। संवैधानिक प्रस्तावना द्वारा ही नागरिकों को विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता का संकल्प लिया गया है। संविधान के अन्तर्गत प्रदत्त मौलिक अधिकारों में इसे आधिकारिक स्वरूप प्रदान किया गया है। अनु0 19 के अन्तर्गत भाषण, अभिव्यक्ति, संगठन निर्माण, सभा व सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता, वृत्ति, उपजीविका चयन आदि की स्वतन्त्रता नागरिको को प्रदत्त की गई हैं। इसी अनुक्रम में अनु0 21 के अन्तर्गत जीवन के अधिकार की स्वतन्त्रता, अनु0 25 से 28 तक सभी धर्मावलम्बियों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदत्त किया गया है। सभी स्वतन्त्रताओं का लोकहित में राज्य द्वारा नियमन किया जा सकता है ताकि सभी नागरिक अपने अधिकारों का उपभोग कर सकें।

उद्देशिका में प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता के विचार को भी प्रस्फुटित किया गया है, जिसका तात्पर्य धर्म, वंश, जाति, वर्ग आदि के आधार पर नागरिक के साथ किसी भी प्रकार का

राजनैतिक, शासनिक, आर्थिक, सामाजिक भेदभाव के अभाव से है, जिसे आधिकारिक रूप प्रदान करने के लिए अनु0 14 से 18 के अन्तर्गत समानता का अधिकार नागरिकों को प्रदत्त किया गया है। नीति के निर्देषक तत्वों के अन्तर्गत भी राज्य से समानता स्थापित करने की अपेक्षा की गई है।

बंधुता का भाव सामाजिक जीवन को एकता तथा सामजस्यता प्रदान करता है, अन्य आर्दश यथा न्याय, स्वतन्त्रता, समानता आदि बंधुता के अभाव में अपूर्ण है। सभी नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकार व नीति के निर्देशक तत्व बंधुता स्थायी करने के भाव को ही सिंचित करते हैं। 42 वें संविधान संशोधन द्वारा भाग 4 (क) में सम्मिलित अनु0. 51 (क) मूलकर्त्तव्यों में भारतीय नागरिकों से भी अपेक्षा की गई है कि सभी नागरिक भारत में समरसता और भातृत्व की भावना का निर्माण करें। बंधुता एक संवैधानिक अन्तर्राष्ट्रीय विचार भी है, नीति के निर्देशक तत्व (अनु0 51) वसुधैव कुटुम्बकम का उद्धोष करते हैं।

लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली व्यक्ति की गरिमा पर आधारित है उद्देशिका ही नही अपितु समानता (अनु0 14 से 18) व स्वतन्त्रता के अधिकारों में शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनु0 23), अस्पृश्यता का अन्त (अनु.17) के प्रावधान इस बात का द्वोतक है कि संविधान निर्माता व्यक्ति की गरिमा के प्रति कितने संवेदनशील थे, साथ ही निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत राज्य द्वारा जीविका के पर्याप्त साधनों की व्यवस्था करना, कार्य स्थल की मानवोचित व न्याय संगत परिस्थितियों का निर्माण करना, जीवन स्तर गुणवत्ता में सुधार आदि के निर्देश संविधान निर्माताओं की इसी भावना की और इंगित करते है। संविधान के अन्तर्गत केवल गरिमा को बनाये रखना ही नही अपितु अनु0 32 के द्वारा उसकी संरक्षा का भी प्रावधान किया है।

भारतीय समाज में भाषा, धर्म, जाति, प्रादेशिकता आदि के आधार पर विभिन्नतायें विद्यमान है। राष्ट्र के समुचित विकास स्वाभिमान, गरिमा, बधुत्व आदि की रक्षार्थ राष्ट्र की एकता व अखण्डता अति आवश्यक है। इसी कारण संविधान के अनुच्छेद 51(क) में मौलिक कर्त्तव्यों के अन्तर्गत नागरिकों का यह कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्र की एकता, अखण्डता, सम्प्रभुता की रक्षा करे उसे अक्षुण्ण बना कर राष्ट्र निर्माण में सहयोग प्रदान करे। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत के राज्यों या उसके किसी भाग को देश से पृथक होने का अधिकार प्राप्त नही है।

उपरोक्त संन्दर्भ में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान की उद्देशिका और संविधान किसी वाद या विचारधारा का अनुगमन नही करता है। विश्व की तीन प्रमुख क्रान्तियों से प्रभावित होकर तत्सम्बधी उद्देश्यों को उद्देशिका में स्थान दिया गया है, यथा फ्रांन्स की क्रान्ति से स्वतन्त्रता, समानता, भातृत्व, सोवियत क्रान्ति से आर्थिक समानता, अमेरिकन क्रान्ति से वैयक्तिक स्वतन्त्रता के विचार को गृहित किया गया है। उद्देशिका भारतीय संविधान का सम्पूर्ण बिम्ब स्पष्ट कर देती है। उद्देशिका द्वारा भारतीय संविधान के स्रोत, शासन प्रणाली के प्रकार, शासन के लक्ष्य को प्रतिबिम्बित कर देती है, यथा भारतीय जनता जहॉ संविधान का स्रोत है वही जनतान्त्रिक समाजवादी शासन, शासन का प्रकार व स्वतन्त्रता, समानता, न्याय स्थापित करना शासन का लक्ष्य है। भारतीय संविधान की उद्देशिका में जिन आदर्शो, लक्ष्यों का उल्लेख किया गया है, वह केवल उद्देशिका तक ही सीमित नही है अपितु संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत विस्तृत रूप से गृहित कर उन्हें वैधानिक स्वरूप प्रदान किया गया है साथ ही स्वतन्त्रता के पश्चात के विधायिकाओं के नियम निर्माण, प्रशासनिक निर्णयों आदि के द्वारा भी इन्हें कार्यरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है लेकिन वर्तमान बहुत

संतोषजनक नही है, भविष्य आशापूर्ण है कि हम उद्देशिका अनुरूप अपनी शासन व्यवस्था और समाज व्यवस्था को निर्मित कर सकेगें।

संदर्भ सूची

1- एम. वी.पायली – इंन्डियन कॉन्स्टिट्यूशन, यूनाइटेड बुक हाउस, दिल्ली, 1975।

2- डी.डी. बसु – इंन्ट्रोडक्शन टू द कॉन्स्टिट्यूशन आफ इंन्डिया, बाधवा एण्ड कम्पनी, आगरा, नागपुर, नई दिल्ली, 2004।

3- सुभाष कश्यप – हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट इंन्डिया, दिल्ली, 2011।

4- नबाब सिंह सोमवंशी – भारतीय संविधान एक समग्र अवलोकन, पियर्सन, दिल्ली, 2013।

5- ए.सी. कपूर एवं के. के. मिश्र –राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, एस.चांद एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2001।

6- ए.डी. आर्शीवादम्, कृष्णकान्त मिश्र– राजनीति विज्ञान, एस.चांद एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2016।

7- Dr. Vidhya Dhar Mahajan& Political Theory (Principles of Political Science)] S. Chand & Company Pvt. Ltd., New Delhi] 2016.